सीखने के अवसरों की बहुलता बच्चे के अनुभवों एवं ज्ञान को दिशा देती है। लेकिन इन समस्त क्रियाओं में सीखने की जटिल प्रक्रिया उद्घाटित होती है। वयस्कों और शिक्षकों को यह अहसास तो हो सकता है कि वे बच्चे के लिए व्यापक फलक प्रदान कर रहे हैं। लेकिन इसमें बच्चा स्वयं को कैसे महसूस करता है ? रवीन्द्रनाथ का यह आत्मवृत्त बच्चे की सीखने की जटिल प्रक्रिया की ओर हमारा ध्यान खींचता है। इसी जटिल प्रक्रिया में एक ओर विविध अनुभवों का संचयन हो रहा होता है तो दूसरी ओर रवीन्द्रनाथ इसे यांत्रिक क्रिया के रूप में भी रेखांकित करते हैं। रवीन्द्रनाथ ने बहुत संक्षेप में, पर विविध विषयों के शिक्षण पर अपनी प्रतिक्रियाएं दर्ज की हैं। शायद यह हमारे लिए सीखने की प्रक्रिया के जटिल पक्षों को उजागर करे।

मेरी शिक्षा

❑ रवीन्द्रनाथ टैगोर

प्रातः काल से रात्रि होने तक पढ़ाई और सीखने का क्रम एक यंत्र की तरह चलता रहता था। इस चरमराती यांत्रिक क्रिया को गतिशील रखने का काम सेजदादा हेमेन्द्रनाथ[1] के सुपुर्द था। वे अपने काम को सख्ती से अंजाम देते थे, लेकिन अब यह बताने में कोई हर्ज नहीं है कि उन्होंने हमारे मस्तिष्क को जिन चीजों से भरने की कोशिश की थी, वे सब नाव में भरे सामान की तरह खिसककर नीचे समुद्र की तली मे जा गिरे। इस प्रकार के सीखने से मुझे किसी प्रकार का कोई लाभ नहीं हुआ। जब कोई किसी वाद्य यंत्र को बहुत ज्यादा ऊंचे स्वर तक खींचने की कोशिश करता है तो खिचांव के दबाव के कारण तार टूट जाते हैं।

सेजदादा ने अपनी सबसे बड़ी बेटी प्रतिभा की शिक्षा के लिए सब प्रकार के इंतजाम किए थे। समय आने पर उसे लोरेटो कॉनवेंट स्कूल में प्रवेश दिलाया किन्तु इससे पूर्व उसकी बांग्ला बुनियाद मजबूत कर दी गई थी। उसे पाश्चात्य संगीत में भी प्रशिक्षण दिलाया गया लेकिन उस कारण भारतीय संगीत में उसकी दक्षता को नुकसान नहीं हुआ। उस समय के संभ्रात परिवारों में हिन्दुस्तानी गायन में उसका कोई सानी नहीं था।

पाश्चात्य संगीत की विशेषता है कि उसके स्वरग्राम और प्रयोग अभ्यासिक अध्यवसाय की मांग करते हैं, कानों में उत्पन्न संवेदनशीलता के अनुरूप संगीत आगे बढ़ता है और पियानो का अनुशासन लय के मामले में किसी मन्थर गति की इजाजत नहीं देता।

प्रतिभा ने हमारे शिक्षक विष्णु से छुटपन से भारतीय संगीत सीखा था। इसी स्कूल में मुझे भी संगीत सीखने के लिए जाना पड़ा। आज का कोई भी संगीतज्ञ चाहे वह नामी हो अथवा गुमनाम, ऐसे गीतों को पास भी नहीं फटकने देगा जिनसे विष्णु ने हमारी संगीत शिक्षा शुरू की थी। वे आम जन मानस में रमे बंगाली लोक गीत थे। उदाहरण के लिए -

''एक घुमन्तु लड़की बस्ती में आई
गोदना गोदने, ओ मेरी बहना।
गोदना तो बहाना है, ऐसा वे कहते हैं,
तो भी उसने मुझ पर जादू कर दिया है,
मुझे सम्मोहित कर दिया है,
और कभी वह मुझे रुलाती है, कभी
मजाक उड़ाती है, अपने गोदनों से,
ओ मेरी बहना''

मुझे कुछ टूटी-फूटी पंक्तियां भी
याद हैं जैसे -

''सूर्य और चन्द्रमा ने अपनी हार
स्वीकार कर ली है,
जुगनू की रोशनी से मंच आलोकित है;

* यह अंश रवीन्द्रनाथ टैगोर की पुस्तक ''माई बोयहुड डेज'' (अनुवाद-मार्जरी साइक्स) से लिया गया है।

1. रवीन्द्रनाथ के तीसरे नम्बर के बड़े भाई।

मुगल और पठान मुरझा गए हैं,

जुलाहा फारसी सफा पढ़ रहा है।''

और :

''आपकी बहू केले का पेड़ है,

गणेश की मां जैसी है वो -

क्योंकि यदि एक भी फूल खिलता और बढ़ता है,

तो उसके इतने बच्चे हो जाएंगे

कि आप भी नहीं समझ पाएंगे

कि उनका क्या करें।''

मुझे वे पंक्तियां भी याद आती हैं जो विस्मृत इतिहास की एक झलकी प्रस्तुत करती हैं :

एक कंटीला जंगल था

जिसमें सिर्फ कुत्ते रह सकते थे;

वहीं पर उसने अपने लिए एक सिंहासन

निर्मित किया .....''

आजकल संगीत सिखाने के लिए पहले हारमोनियम पर स्वरग्राम का अभ्यास कराते हैं - सा, रे, ग, म इत्यादि और इसके बाद कुछ सरल हिन्दी गीत सिखाते हैं। लेकिन समझदार शिक्षक जो हमें पढ़ाता था, वह जानता था कि लड़कपन में भी कुछ बाल सुलभ जरूरतें होती हैं और सरल बंगाली शब्द बंगाली बच्चों की जबान के लिए हिन्दी की अपेक्षा सहज होते हैं। इसके अतिरिक्त, लोक संगीत की लय तबले के अलावा बाकी साज को अनावश्यक बना देती है। वह हमारी रगों में नाचती होती थी। इस प्रयोग से यह मालूम हो गया कि जिस प्रकार बच्चा अपनी मां की तुकबन्दियों और तुकबन्द छन्दों से पहली बार साहित्य का आनंद लेता है, उसी प्रकार वहीं से वह संगीत का आनंद भी प्राप्त करता है।

उस समय भारतीय संगीत का विनाशक हारमोनियम, प्रचलन में नहीं था। मैं गीत गाने का अभ्यास अपने तम्बूरे पर करता था जो मेरे कंधे के सहारे टिका होता था; की-बोर्ड की गुलामी से मैंने अपने आप को बरी रखा।

इसमें मेरे अलावा और किसी का दोष नहीं है कि मैं बहुत दिन किसी एक चीज को सीखने की पिटी-पिटाई लीक पर अपने को कायम नहीं रख पाया। मैंने इच्छानुसार अपने कोष में इजाफा किया जहां से जब भी जिस भी ज्ञान को बटोरने का मौका मिला। यदि मैं अपना दिमाग संगीत के विधिवत अध्ययन की ओर लगा पाता तो वर्तमान संगीतज्ञों के पास मेरे काम को न्यून समझने का कोई कारण नहीं होता क्योंकि मेरे पास अवसर तो बहुत थे। जब तक मेरी शिक्षा का जिम्मा मेरे भाई पर था, मैं विष्णु के साथ भक्ति गीतों को दोहराता जरूर था लेकिन दिमाग से मैं गैर-हाजिर रहता था। जब मेरी इच्छा होती थी, मैं कभी-कभी जब सेजदादा गाने का अभ्यास कर रहे होते थे तो उनके कमरे के दरवाजे के पास चिपका रहता था और जो गीत वह गा रहे होते थे, उसे गाने की कोशिश करता था। एक बार मैंने उन्हीं के एक गीत को सुना था बिना किसी की नजर पड़े और उसकी धुन को दिमाग में बैठा लिया था और जब मां को उसी शाम सुनाया तो वो आश्चर्य चकित हो गई थीं।

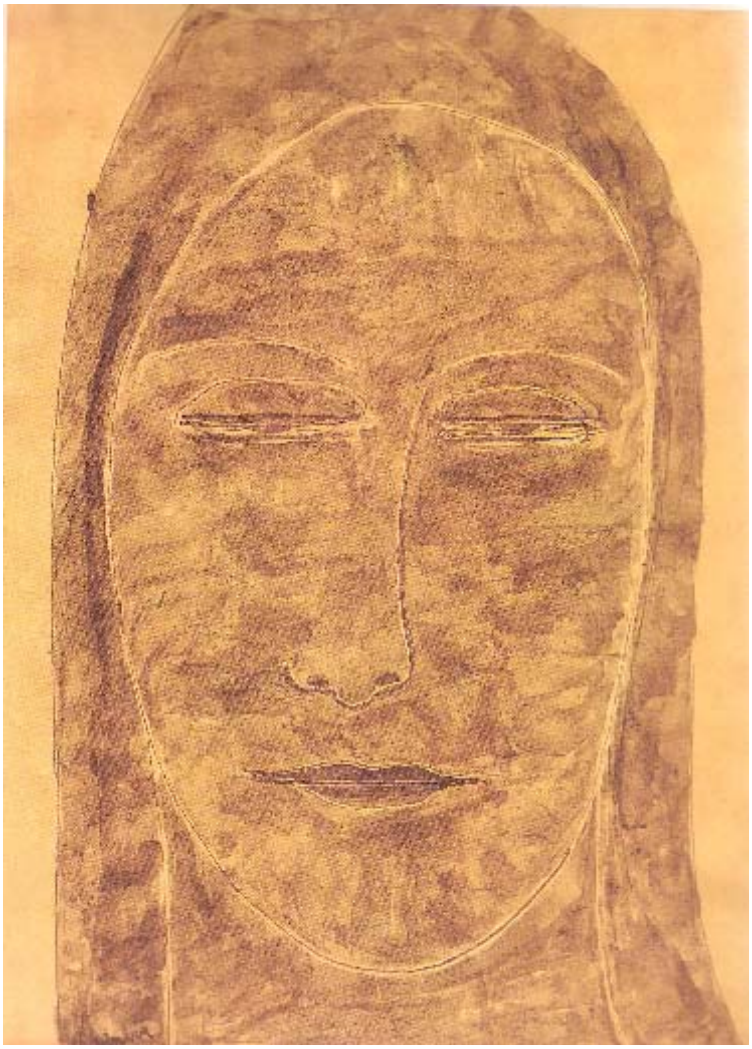

रवीन्द्र नाथ टैगोर

हमारे परिवारिक मित्र

श्रीकंठ बाबू रात-दिन संगीत में ही डूबे रहते थे। वे नहाने से पहले शरीर पर चमेली के तेल की मालिश करते हुए बरामदे में बैठते, हुक्का हाथ में लिए और खुशबूदार तम्बाकू की सुगंध हवा में फैलाते हुए। उन्होंने कभी हमें गाना नहीं सिखाया, वे हमें गाकर सुनाते थे और हमने उनसे अनायास कई गीत गाना सीख लिया। जब उन्हें जोश आता था तो अपने को रोक नहीं पाते थे; वे खड़े हो जाते और सितार हाथ में लिए नाचने लगते। उनकी बड़ी-बड़ी भावपूर्ण आंखें आनन्द से चमक उठतीं, वे गीत पर छा जाते 'भाई छेड़ो ना ब्रज की बांसरी' और उन्हें तब तक संतोष नहीं होता जब तक कि मैं भी उनके गायन में शामिल नहीं हो जाता।

आवभगत के चलते उन दिनों लोगों के घर के दरवाजे सभी के लिए खुले होते थे। किसी व्यक्ति के घर में प्रवेश करने के पहले उससे घनिष्ट परिचय होना जरूरी नहीं था। घर में जो भी आता था, उसके लिए एक बिस्तर और भोजन के समय एक प्लेट चावल हर समय उपलब्ध रहता था। एक दिन, मिसाल के तौर पर, एक अनजान मेहमान आया, जिसके पास कंधे पर रखी रजाई के बंडल में तम्बूरा लिपटा हुआ था। उसने बंडल खोला और बैठ गया और अपने दोनों पैर हमारे स्वागत कक्ष के एक कोने में पसार लिए; कन्हाई ने, जिसका काम हुक्का भरना और पेश करना था, उसे शिष्टाचार निभाते हुए हुक्का पेश किया।

हुक्के की तरह मेहमानों की आवभगत में पान का भी महत्त्वपूर्ण स्थान था। उस समय महिलाओं का प्रात: कालीन एक काम यह भी था कि वे जनानेखाने में बैठी बाहर के स्वागत कक्ष में पधारने वाले आगन्तुकों के लिए ढेर सारे पान तैयार करें। करीने से वे पान में एक डंडी से चूना और कत्था लगातीं, उसमें अन्य चीजें मसाला आदि रखतीं और फिर तह बनाकर उसे लौंग से अटका देतीं। इस पान के ढेर को फिर एक पीतल के पात्र में रखा जाता और एक नम कपड़े से जो पहले से ही कत्थे के निशान से सना होता था, ढक दिया जाता। तभी बाहरी जीने के कमरे में तम्बाकू तैयार करने का शोरगुल भी चलता रहता। मिट्टी के एक बड़े टब में कोयलों के अंगारे राख से ढके होते और हुक्कों की नालियां जिनमें गुलाब जल की सुगंध बहती, ऐसे लटकी होतीं मानो नागलोक के सर्प हों। हुक्के की यह खुशबू सबसे पहले घर में आने वालों का स्वागत करती और वे सीढ़ियां चढ़ते हुए घर में आते। मेहमानों के उचित आदर-सत्कार की यह एक सर्वमान्य प्रथा थी। वह पात्र जो कभी पान से लबरेज होता था अब नहीं दिखता और हुक्का-बरदारी का धन्धा लुप्त हो चुका है। वे अब मिठाइयों की दुकान पर काम करते हैं जहां तीन दिन पुराने संदेश[1] को गूंदते हैं जिसे 'नया' करके बेचा जाता है।

अपरिचित संगीतज्ञ कुछ दिन तब तक ठहरा जब तक उसे अच्छा लगा। उससे किसी ने कोई प्रश्न नहीं पूछा। सुबह होते ही मैं उसे उसकी मच्छरदानी से बाहर खींच लाता और उसे अपने लिए संगीत सुनाने के लिए मजबूर करता (जिन्हें नियमित पढ़ाई से लगाव नहीं होता वे अनियिमित अध्ययन में मशगूल रहते हैं)। तब उषा कालीन मधुर ध्वनि 'बंसी हमारी रे' हवा में तैरने लगती।

उसके बाद जब मैं थोड़ा बड़ा हुआ जदू भट्ट नाम के एक बहुत बड़े संगीतज्ञ आए और हमारे यहां ठहरे। उन्होंने एक बड़ी गलती यह की कि मुझे संगीत सिखाने की ठान ली और परिणाम यह हुआ कि मैं उनसे औपचारिक रूप से कुछ नहीं सीख सका। लेकिन मैंने उनसे चोरी छिपे थोड़ा ज्ञान जरूर हासिल कर लिया। मुझे यह गीत जिसे काफी धुन में गाया गया था, बहुत पसंद था - रूमा झूमा बरखे आजू बदरवा .... और यह मेरे वर्षा गीतों के संग्रह में आज भी सुरक्षित है। पर दुर्भाग्यवश लगभग इसी स म य बिना सूचना के एक और मेहमान आ गए जो बाघ का शिकार करने के लिए मशहूर थे। उन दिनों बंगाली बाघ के शिकारी को किसी चमत्कारी व्यक्ति से कम नहीं समझा जाता था और इस कारण मेरा अधिकांश समय उनके कमरे में बीतता था। अब मैंने यह समझा है - जो मैं पहले सपने में भी नहीं सोच सकता था- कि बाघ के जिस खतरनाक हमले का वर्णन वे अत्यन्त रोमांचक ढंग से करते थे, उसमें बाघ द्वारा कोई नुकसान पहुंचाने की संभावना थी ही नहीं, उन्हें यह विचार शायद बाघ के मुंह फाड़ने पर दिखाई देने वाले दोनों जबड़ों से आया होगा जो उन्होंने अजायबघर में भूसे से भरे बाघों से लिया होगा। इन दिनों मैं इस हीरो की पान और तम्बाकू से खातिरदारी करने में जुटा रहा जबकि संगीत के फीके से स्वर भी मेरे उदासीन कानों में पड़ जाते थे।

यह सब तो हुआ संगीत के बारे में। अन्य विषयों में भी सेजदादा इतनी ही उदारता से मेरी नींव को तैयार करने में लगे थे। इसे मैं अपनी प्रकृति का ही दोष मानूंगा कि उससे मुझे कोई बड़ा फायदा नहीं हुआ। मेरे जैसे लोगों को ध्यान में रखते हुए ही रामप्रसाद सेन ने लिखा था कि, ''अरे ओ मस्तिष्क, तुम नहीं समझते कि तुम्हें विकसित कैसे होना है।'' विकसित होने का सायास प्रयास मुझसे कभी नहीं हो पाया। लेकिन मैं ऐसे कुछ क्षेत्रों के बारे में बताना चाहूंगा जहां इसके लिए जमीन तैयार करने का किंचित् प्रयास हुआ था।

सुबह अंधेरा टूटने से पहले मुझे कुश्ती लड़ने का अभ्यास करने के लिए उठना होता था - सर्दी के दिनों में ठिठुरता और कांपता रहता था। शहर का एक ख्यातनाम काना पहलवान मुझे

1. एक लोकप्रिय बंगाली मिठाई

अभ्यास कराता था। बाहरी कमरे के उत्तर में एक खुली जगह थी जिसे धान्यागार (कोठार) के नाम से जाना जाता था। यह नाम उस समय से चला आ रहा था जब शहर के अस्तित्व ने ग्राम्य जीवन को पूरी तरह से निगल नहीं लिया था और कुछ खुले स्थान अभी भी बाकी थे। जब शहरी जीवन अपनी तरुणाई में था, हमारा कोठार अनाज से भरा रहता था जो पूरे साल के लिए काफी होता था। रिआया द्वारा लाया गया पैदावार का एक अंश भी उसी में रखा जाता था। उसी जगह पर चारदीवारी के सहारे एक शेड डाला गया था, जहां कुश्ती होती थी। जमीन को लगभग एक हाथ गहरा खोदकर मिट्टी को भुरभुरा बनाया गया था और उसमें एक मन सरसों का तेल मिलाया गया था। वहां मेरे साथ पहलवान का गिर जाना बच्चों का सा खेल था। अभ्यास पूरा होने तक मैं मिट्टी से पूरा सन चुका होता या अपने को पूरी तरह सान लेता था और तब मैं कमीज पहनता और अन्दर जाता।

मेरी मां को मुझे हर सुबह इस तरह मिट्टी से पूरी तरह सना देखकर अच्छा नहीं लगता था - उन्हें डर था कि उनके बेटे की त्वचा का रंग काला पड़ जाएगा। आजकल की फैशनपरस्त गृहणियां पाश्चात्य दुकानों से डिब्बों में बंद श्रृंगार के प्रसाधन खरीदती हैं लेकिन तब वे इसे अपने हाथों तैयार करती थीं। इसमें बादाम का पेस्ट, गाढ़ी मलाई, संतरे के छिलके और बहुत-सी अन्य चीजें मिलाई जाती थीं जो मुझे अब याद नहीं हैं। काश मैं इन्हें याद रख लेता और बनाना सीख पाता तो एक दुकान खोलता और इन्हें ''बेगम विलास'' के नाम से बेचकर कम से कम संदेश वाले के बराबर पैसा बना सकता था। रविवार के दिन सुबह बरामदे में मेरे बदन को खूब रगड़ा जाता था। इतना कि मैं पीछा छुड़ाने के लिए बेचैन हो उठता। वैसे एक बात मेरे स्कूल के साथियों में प्रचलित हो गई थी कि हमारे परिवार में बच्चों को पैदा होते ही वाइन से नहलाया जाता है और यही कारण है कि हमारी त्वचा यूपरोपियनों जैसी सफेद होती है।

रवीन्द्र नाथ टैगोर

जैसे ही मैं कुश्ती के मैदान से घर में प्रवेश करता, मुझे चिकित्सा महाविद्यालय का एक छात्र बैठा मिलता, जो मुझे हड्डियों का ज्ञान कराने आता था। हड्डियों का एक संपूर्ण कंकाल दीवार पर टंगा होता था। रात को यह हमारे शयनकक्ष की दीवार पर टंगा होता था और जब हवा चलती तो इसकी हड्डियां एक दूसरे से टकराती और आवाज करतीं लेकिन मेरा भय - क्योंकि मैं इसे लगातार पढ़ाई के समय काम में ले रहा था - जाता रहा था। हड्डियों के लम्बे और कठिन नाम मैंने कंठस्थ कर लिए थे।

प्रवेश द्वार पर टंगी घड़ी ने सात बजा दिए थे। मास्टर नीलकमल समय की पाबंदी के कायल थे। एक पल का भी अन्तर नहीं हो सकता था। उनका शरीर दुबला और सिकुड़ा हुआ था। लेकिन उनका स्वास्थ्य उनके शिष्य की भांति ही अच्छा था। और एक बार दुर्भाग्यवश भी उन्हें कभी सिर दर्द तक नहीं हुआ। अपनी पुस्तक और स्लेट लेकर मैं मेज के सामने बैठ गया और उन्होंने ब्लैक बोर्ड पर खड़िया से गणित के सवाल लिखना शुरू कर दिया। सब कुछ बंगाली में था - गणित, बीज गणित और ज्यामिति। साहित्य में मैंने एक छलांग लगाई थी।''सीता के वनवास'' से ''मेघनाद वध'' काव्य तक। इनके अलावा विज्ञान भी था। समय-समय पर सीतानाथ दत्त आया करते थे और हमने विज्ञान के बारे में कुछ सतही ज्ञान जानी-पहचानी चीजों के साथ प्रयोग करते हुए प्राप्त कर लिया था। एक बार संस्कृत के विद्वान हरेम्म तत्त्वरत्न आए और मैंने मुग्धबोध संस्कृत व्याकरण को हृदयंगम कर सीखना शुरू किया हालांकि उसका एक शब्द भी नहीं समझ पाया।

इस प्रकार प्रात: काल के समय में मुझ पर पढ़ाई का ढेरों बोझ लाद दिया गया था, लेकिन जैसे-जैसे यह बोझ बढ़ता गया, वैसे-वैसे मेरे दिमाग ने इससे अंशत: मुक्त होने की युक्ति सोची - जिस जाल में मैं लिपटा था उसमें छिद्र करके मेरी तोते जैसे पढ़ाई

इन छिद्रों में से होकर पलायन कर गई। मास्टर नीलकमल ने अपने शिष्य की बुद्धि के बारे में जो राय जाहिर की, वह इस लायक नहीं है कि उसे उजागर किया जाए।

बरामदे में दूसरी ओर एक बुजुर्ग दर्जी है जिसकी नाक पर मोटे शीशों वाला चश्मा चढ़ा है और वह बैठा हुआ झुककर सिलाई कर रहा है और नमाज का वक्त होने पर फौरन और बिना नागा, नमाज अदा करता है। मैं उसे देखता और सोचता हूं कि नियामत कितना भाग्यशाली है। उस समय मेरा सिर गणित के प्रश्न करते-करते चकराया होता है। मैं स्लेट को अपनी आंखों से ढकता हुआ मुंह नीचा करके देखता हूं तो प्रवेश द्वार पर चन्द्रभान दरबान दिखता है जो अपनी लम्बी दाढ़ी पर लकड़ी की कंघी घुमा रहा होता और दाढ़ी के दो भाग कर उन्हें हरकान के चारों और छल्ले की तरह लपेट रहा होता।

उसका सहायक दरबान एक पतला-दुबला लड़का उसके पास बैठा है, एक बाजू में बाजूबंद पहना है और तम्बाकू काट रहा है। वहीं घोड़े ने अपने हिस्से का सुबह का चना-दाना खत्म कर लिया है और कौवे फुदक-फुदक कर चारों तरफ फैले दानों को चुग रहे हैं। हमारे कुत्ते जॉनी को अपने कर्त्तव्य का बोध हो गया है और वह भौंक-भौंक कर उन्हें भगा रहा है।

बरामदे में झाड़ू लगाते हुए रोज इस मिट्टी को बरामदे के एक कोने में इक्ट्ठाकर एक ढेरी बना दी गई थी। जिसमें मैंने सीताफल का एक बीज बो दिया था। मैं उत्सुकता और कौतूहल से भरा उसमें से नई पत्तियां निकलने की प्रतीक्षा कर रहा था। जैसे ही मास्टर नीलकमल आते मैं दौड़कर जाता, निरीक्षण करता और उसे पानी देता। अंतत: मेरी आशाएं फलीभूत न हो सकीं। उसी झाड़ू ने जिसने यह मिट्टी इक्ट्ठा की थी, इसे फेंककर चातुर्दिक् वायु के हवाले कर दिया।

अब सूरज चढ़ चुका है और तिरछी परछाइयों ने आधा आंगन ढक लिया है। घड़ी ने नौ बजा दिए हैं। ठिगना और सांवले रंग का गोविन्दा कंधे पर गंदी और पीले रंग की तौलिया डाले मुझे नहाने के लिए ले जाता है। साढ़े नौ बजते ही रोज एक-सा नीरस भोजन - चावल, दाल और झोलवाली मछली - आ जाता है, जो मुझे ज्यादा पसंद नहीं है।

घड़ी दस बजाती है। मुख्य सड़क से फेरी वाले की आवाज आती है - ''कच्चे आम'' इससे मन उदिग्न हो उठता है।

दूर से और बहुत दूर से पीतल के बर्तन बेचने वाले की आवाज और उनकी खनखनाहट क्रमश: तब तक सुनाई देती है, जब तक वह लुप्त नहीं हो जाती। गली में पास के मकान की छत पर एक महिला अपने बाल सुखा रही है और उसकी दो छोटी बच्चियां सीपियों और शंखों से खेल रही हैं। उनके पास फुर्सत ही फुर्सत है क्योंकि उन दिनों लड़कियों को स्कूल नहीं जाना पड़ता था और मैं सोचा करता था कि कितना अच्छा होता यदि मैं लड़की होता। लेकिन होता यह है कि खटारा बग्घी में जुता बूढ़ा घोड़ा मुझे मेरे अंडमान ले जाता है, जहां 10 बजे से 4 बजे तक मुझे जहन्नुम में जीना होता है।

साढे चार बजे मैं स्कूल से लौटता हूं। जिमनास्टिक मास्टर आ चुका होता है और मैं लगभग एक घंटे तक दो समानांतर डंडों पर अपने शरीर को व्यायाम कराता हूं। वह गया नहीं कि तुरंत कला शिक्षक आ जाता है।

धीरे-धीरे दिनभर की थकी रोशनी मंद हो चुकी होती है। ईंट और कंक्रीट से बने दैत्यरूपी शहर पर शाम को तरह-तरह के शोरों की मिश्रित गूंज आच्छादित हो जाती है। अध्ययन कक्ष में तेल का चिराग जल रहा होता है। मास्टर अगोर आ चुके होते हैं और अंग्रेजी की पढ़ाई शुरू हो जाती है। मेज पर पड़ी काले रंग की अंग्रेजी की पाठ्यपुस्तक मेरी प्रतीक्षा कर रही होती है। इसकी जिल्द ढीली हो चुकी है, पन्नों पर धब्बे और निशान लगे हैं और थोड़ी फट भी गई है; इस पर मैंने अपना नाम अंग्रेजी में लिखने का प्रयास किया है, गलत जगहों पर और बड़े और मोटे अक्षरों में। जैसे ही मैं पढ़ना शुरू करता हूं ऊंघने लगता हूं और झटके से फिर जाग जाता हूं। और वहीं से फिर पढ़ना शुरू करता हूं जहां से आरंभ किया था। जितना पढ़ता हूं, इससे ज्यादा भूल जाता हूं। जब अंत में मैं बिस्तर में लुढ़क जाता हूं तब अनुभूति होती है कि अब कुछ समय ऐसा है जिसे मैं अपना कह सकता हूं। और तब वहां मैं एक राजा के बेटे की यात्रा की अन्तहीन कहानियां सुनता हूं जो अन्तहीन सीधे-सपाट मैदान पर बढ़ता ही जाता है। ◆

अनुवाद : सुरेन्द्र कुशवाह